शोध पत्र

भारतीय संस्कृति की आधारशिला ''वेद''

डॉ. पुष्पा
सहायक आचार्य (संस्कृत)
गौरी देवी राज. महिला महाविद्यालय,
अलवर (राज0)

भारतीय संस्कृति में वेदों का स्थान महत्वपूर्ण व गौरवपूर्ण है। वेद भारतीय सभ्यता और संस्कृति की सशक्त आधारशिला है। मानव जीवन का प्रत्येक पक्ष वेदों में प्रतिबिम्बित होता है। वेदकालीन संस्कृति आदर्श संस्कृति थी। संस्कृति शब्द को निश्चित परिभाषा में बाँधना कठिन कार्य है परन्तु अलग–अलग विद्वानों ने संस्कृति शब्द को अपने–अपने तरीके से परिभाषा बद्ध किया है जिनमें से कुछ निम्न है :–

डॉ. रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार संस्कृति एक ऐसा गुण है जो हमारे जीवन में व्याप्त है। एक आत्मिक गुण है, जो मनुष्य स्वभाव में, उसी प्रकार व्याप्त है जिस प्रकार फूलों में सुगन्ध और दूध में मक्खन''। अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान और दार्शनिक डॉ. व्हाइटहैड के शब्दों में ''संस्कृति मानसिक प्रक्रिया है और सौन्दर्य तथा मानवीय अनुभूतियों को हृदयगंम करने की क्षमता है।''

निष्कर्ष रूप में यह सिद्ध है कि सत्यं, शिवं सुन्दरम् ही संस्कृति का मूल मंत्र है। सभ्यता बाह्य है जबकि संस्कृति आंतरिक, संस्कृति किसी समाज की चरम मूल्य विषयक भावना है, जिसके अनुसार वह अपने जीवन को ढ़ालना चाहता है।

वैदिक वाड्.मय मानव सभ्यता व संस्कृति के विकास का सर्वप्रथम स्त्रोत है। वेद शब्द विद धातु और धञ् प्रत्यय से निष्पन्न है। जिसका तात्पर्य है ज्ञान। स्वामी दयानन्द ने अपनी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में वेद की व्याख्या विदन्ति, विद्यन्ते, भवन्ति, ''विन्दन्ति सर्वा सत्यविद्या यैर्येषु वा स वेद'' इत्यादि प्रकार से की है अर्थात् जिनके द्वारा या जिनमें सारी सत्यविधाएँ जानी जाती है, विद्यमान है या प्राप्त की जाती है, वह वेद है। सायणाचार्य कृत वेदभाष्यभूमिका में वेद की व्युत्पत्ति इस प्रकार बताई है – ''इष्ट

प्राप्तयष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो वेदयति स वेद'' अर्थात् इष्ट की प्राप्ति तथा अनिष्ट के परिहार के अलौकिक उपाय बताने वाला ग्रन्थ वेद है। अतः वेद ज्ञान के अक्षय कोष है, जिनमें सभी विषयों का समावेश किया गया है। कोई भी विषय वेद की परिधि से बाहर नहीं है इसीलिए मनुस्मृति में भी कहा है – वेदोऽखिलो धर्ममूलम'' अर्थात् वेद समस्त धर्म का मूल है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में ऐहलौकिक व पारलौकिक समस्त विषयों का समावेश है, जो मनुष्य के पथभ्रष्ट होने पर उसे सन्मार्ग की ओर अग्रसर करते हैं। वैदिक वाड्.मय में प्रतिपादित विषय संक्षेप में निम्नानुसार वर्णित हे जो सार्वकालिक व सार्वभौमिक शाश्वत सत्य हैं–

उपदेशात्मक विषय – ऋग्वेद में शिक्षात्मक और उपदेशात्मक सूक्तों में समस्त आदर्श मानवीय जीवन प्रतिबिम्बित होता है जो मनुष्य को अमूल्य शिक्षा प्रदान करने में अद्वितीय है। अक्षसूक्त में एक जुआरी का आत्मप्रलाप वर्णित है। इसमें बहुत ही काव्यात्मक रूप में एक द्यूतकार का जुएँ के प्रति अनायास आकर्षण, स्वयं अपने द्वारा ही अपना ग्रहविनाश और अपने ही परिवारजनों एवं परिवार द्वारा उसका तिरस्कार अन्त में स्वयं जुआरी द्वारा स्वयं परिश्रम करके, अपने हाथों से परिश्रम कर अपने व अपने परिवार की उदरपूर्ति का उपदेश दिया है। इस सूक्त के द्वारा शिक्षा दी है कि परिश्रम द्वारा अर्जित धन से ही मनुष्य को वास्तविक सुख और आनंद की प्राप्ति होती है। मंत्र का आशय है कि पासों से मत खेलो! कृषि ही करो ! उसी को बहुत समझते हुए उसी धन में आनन्दित हो ! हे कितव ! वहीं पर गायें है और वहीं पर पत्नी है। यह मुझे सबके प्रेरक सविता ने विविध प्रकार से कहा है।[1] मंत्र में गाय मानसिक सुख का प्रतीक है जो जाया शारीरिक सुख का, सम्पूर्ण सूक्त ही अत्यन्त मार्मिक और शिक्षाप्रद है।

'दान' भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण बिन्दु है। ऋग्वेद में भी बार–बार कहा है जो व्यक्ति दान न देकर धन को केवल अपने ही स्वार्थ के लिए व्यय करता है, वह व्यक्ति निःसंदेह पाप को ही खाता है। ऋग्वेद में कहा है जो व्यक्ति दान नहीं देता ऐसे मित्र से दूर हट जाना चाहिए।[2] शुभ वाणी की भूरी–भूरी प्रशंसा वेदों में वर्णित है। जो बुद्धिमान छाने हुए सत्तू की तरह परिष्कृत वाणी का प्रयोग करते हैं, बड़े–बड़े विद्वान उनके गुणों को पहचानकर उनके मित्र बन जाते हैं और उनकी वाणी में लक्ष्मी सदा निवास करती है।[3]

शुक्ल यजुर्वेद का 34वॉ अध्याय (शिव संकल्प सूक्त) में मनोविज्ञान में मूलभूत गूढ तत्वों को काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया है।[4] शिव संकल्प सूक्त में बताया है कि संसार में मन बहुत बड़ी शक्ति है। यदि सबके मन में परोपकार व कल्याण की भावना आ जाये तो सभी प्रकार का क्लेह, द्वेष और ईर्ष्याभाव नष्ट होकर सर्वत्र शान्ति का साम्राज्य होगा। यजुर्वेद में विश्वबंधुत्व की भावना भी चित्रित की गई है अर्थात् मित्रता की आँख से मैं सब जीवों को देखूं।[5] चारों वर्णों कें लिए समृद्धि की प्रार्थना की है अर्थात् हमारे ब्राह्मणों को दीप्ति से युक्त कीजिए, हमारे क्षत्रियों को दीप्तिमान कीजिए। हमारे वैश्यों और शूद्रों को दीप्ति से युक्त कीजिए और मुझे भी प्रकाश से दीप्त कीजिए।[6] यजुर्वेद में मनुष्य के लिए शास्त्रोक्त कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीवित रहने का उपदेश दिया है।[7]

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में वर्णित पुत्री की पतिकुल में विदाई होने पर (पिता) कण्व शकुन्तला (पुत्री) को जो सारगर्भित शिक्षा प्रदान करते हैं वह सार्वकालिक व सार्वभौमिक सत्य कथन है।[8] इसी प्रकार ऋग्वेद में भी सोम और सूर्या के विवाह का वर्णन अति रोचक है। सूर्य अपनी पुत्री को सोम को देते समय गृहस्थ धर्म की शिक्षा देते हैं। नवदम्पत्ति को दीर्घायु, धनधान्य सम्पन्न, निरोग एवं पुत्रपौत्रादि सौभाग्यसम्पन्नता के आर्शीवचन कहे जाते हैं। जिसका अभिप्राय है कि हे दम्पत्ति। आप दोनों इसी लोक में रहो, कभी तुम्हारा वियोग न हो और तुम पूर्णायु हो। पुत्र पौत्रादि के साथ खेलते हुए अपने परिवार में आनन्दित रहो।[9] इस सूक्त में तत्कालीन विवाह सम्बन्धी रीति–रिवाजों, परम्पराओं और सरमापाणि सम्वाद (10.130), इन्द्र वरूण संवाद (4.12), देवगण एवं अग्नि संवाद (10.52), वरूण अग्नि संवाद (10.51), इन्द्र इन्द्राणि संवाद (10.86), विश्वामित्र नदी संवाद (3.33) इत्यादि प्रसिद्ध सूक्त है। इनके माध्यम से तत्कालीन वैदिक संस्कृति, समाज, नैतिकता, समाज और धर्म का परिचय मिलता है। इन आख्यानों में गूढ़ नैतिक, दार्शनिक व आध्यात्मिक तत्वों को सम्वाद के माध्यम से सरस, सरल, रोचक बनाकर प्रस्तुत किया है। विश्वेदेवा सूक्त में प्रार्थना की है कि वर–वधू दोनों के हृदयों को परस्पर समासक्त कर सभी क्लेशों से रहित करो। मातरिश्वा उनकी गति को एक–दूसरे के अनुकूल बनाए तथा उनके बंधन को दृढ़ रखे।[10]

वैदिक आर्य मूर्ति पूजा तथा मन्दिरों की सत्ता में विश्वास नहीं रखते थे। वे विभिन्न देवताओं की पूजा करते थे, जो विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों के मानवीयकरण थे। वैदिक संस्कृति यज्ञ प्रधान संस्कृति थी जिसमें प्रत्येक कार्यों में यज्ञों को करने का विधान था। वैदिक धर्म निराशावादी और पलायनवादी नहीं था, वे सौ वर्षों तक जीवित रहने में विश्वास रखते थे और सांसारिक सुखों का पूर्णरूप से आनंद प्राप्त करना चाहते थे। नैतिकता का स्तर अपेक्षाकृत ऊँचा था। यम–यक्षी संवाद सूक्त नैतिकता का अमर संदेश देता है। परस्त्री गमन और बलात्कार घृणित और गंभीर अपराध माने जाते थे। ऋग्वेद में अवैध संतान और दुष्चरित्र स्त्री को समाज में आदर प्राप्त नहीं था। अतिथि सत्कार को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। अग्नि को अतिथि कहा है अर्थात् जिस प्रकार अग्नि पवित्र और पूजनीय है उसी प्रकार अतिथि भी पवित्र व पूज्य है। तैतरीय ब्राह्मण में भी वर्णित है – 'अतिथि देवो भव'।

वर्तमान समय में भारत सहित सम्पूर्ण विश्व अनेक समस्याओं से जूझ रहा है, लेकिन उन समस्याओं से निजात का उपाय नहीं सूझ रहा है। इन समस्याओं में से कुछ समस्याएँ जैसे – आतंकवाद, भुखमरी, भ्रष्टाचार, पर्यावरण प्रदूषण, बेरोजगारी, हिंसा, मानवीय मूल्यों का पतन, महिलाओं के प्रति बढ़ते अपराध इत्यादि। आतंकवाद जैसी विकराल समस्या के पीछे अशिक्षा और बेरोजगारी है, जिसके मूल में अकर्मण्यता है। इस समस्या का समाधान वैदिक साहित्य 'कुर्वन्नेवेहकर्माणि जिजीविषेत्' के माध्यम से देता है। कर्म करने की प्रेरणा देता है, कर्मशील व्यक्ति कभी बेराजगार नहीं रह सकता। 'यज्ञकर्म', कृषि कर्म करने की प्रेरणा देता है जिससे वह कर्मशील रहेगा। ऋग्वेद कहता है कि जो व्यक्ति यज्ञकर्म करता रहता है, उसे कर्म करने के लिए अथवा व्यापार करने के लिए सोमदेव गाय एवं कर्मशील घोड़े देते हैं। इससे छोटे–छोटे उद्योगों को स्वयं आविष्कृत करने की प्रेरणा मिलती है। आज हम पूर्ण रूप से अपना कर्तव्य विस्मृत कर सरकार पर निर्भर है। वेद इस निर्भरता को अस्वीकार करके व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनने का उपदेश देता है।[11]

यजुर्वेद में यज्ञ में होने वाली हिंसा को निषिद्ध बताया है। हिंसा को अनुचित ठहराते हुए कहते हैं कि मद्य, मछली, पशुओं का माँस, द्विजातियों का बलिदान आदि धूर्तों द्वारा यज्ञ में प्रवृर्तित हुआ, वेदों में ऐसा विधान नहीं है। यजुर्वेद में यज्ञों की प्रधानता है 'सर्वमेघ' में आत्मा को परमात्मा में समर्पित करके मुक्ति प्रापत करने को सर्वमेघ कहा है। पुरूष मेघ में

आदर्श समाज व्यवस्था के अन्तर्गत किस प्रकार के व्यक्ति को कहां नियोजित किया जाए, इसका वर्णन है। आज के वैज्ञानिक युग में यह स्वीकार किया गया है कि सूर्य और चन्द्रमा की परिस्थितियों से मनुष्यों की मानसिकता और उसकी क्रियाओं पर प्रभाव पड़ता है। अश्वमेध मानवी पुरूषार्थ की दिव्य चेतना से संचालित करने की एक सूक्ष्म वैज्ञानिक प्रक्रिया है। असत्य को त्यागकर सत्य के मार्ग पर चलने का आग्रह किया है। ''इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि''

भारतीय संस्कृति का मूलभूत तत्व राष्ट्रीय भावना है। चन्द्रशेखर आजाद ने कहा है कि ''अपने देश से बढ़कर कोई निकट सम्बन्धी नहीं है। उर्दू शायर इकबाल के अनुसार – ''कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी, ''उन्होंने जिस अमिटता का जिक्र किया है वह हमारी राष्ट्रीयता है, यह राष्ट्रीयता ही हमारी पहचान है जिसमें हमारे देश देश की संस्कृति व जीवन दर्शन सम्मिलित है। ऋषियों को यह भली–भाँति ज्ञात था कि राष्ट्र हित सर्वोपरि है इसलिए अपनी जन्मभूमि, राष्ट्रभूमि के प्रति निष्ठावान रहें। निःस्वार्थ भावना से देशहित व उन्नति हेतु सतत जागरूक व संगठित रहे। जनमानस में राष्ट्र प्रेम की अदम्य भावना को जागृत करने के लिए हमारे ऋषियों ने वेदों में अनेक स्थलों पर मातृभूमि की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है और सभी लोग एक साथ मिलकर रहे, मिलकर कर्म करें, मतभेद मिटाकर संगठित होकर साथ–साथ कदम बढ़ाए यही संदेश दिया है। यह भाव ऋग्वेद के संज्ञान सूक्त के मंत्रो द्वारा भी सिद्ध होता है जिसमें बताया है कि जिस प्रकार पुरातन देवतागण एकमत होते हुए यज्ञ में हविष्यान्न को ग्रहण करते थे, उसी प्रकार तुम सब एक साथ मिलकर चलो, परस्पर विरोधों का त्याग कर, सबके मन भी एक जैसे हो।[12] अन्य मन्त्र में भी विस्तार करते हुए कहा है कि आप सभी का चिंतन, मन, ज्ञान, विचार, क्रियाएँ एक जैसी हो क्योंकि मैं समान सामग्री से यजन करता हूँ अर्थात् एकता रूपी छवि को प्रदान करता हूं। अतः आप सब मनुष्य एकता के सूत्र में निबद्ध हो जाओ।[13] समष्टि के हित के लिए व्यष्टिगत हितों का त्याग करने का भी उपदेश दिया है क्योंकि 'जहाँ सुमति वहाँ सम्पत्ति नाना', 'एकता में बल' जैसी लोकोक्तियाँ सार्वकालिक, सार्वभौमिक सत्य है कि एकता में ही बल है। अतः एकजुट होकर रहो। इसी प्रकार यजुर्वेद में भी राष्ट्र शब्द सबके सुख और कल्याण तथा निरन्तर राष्ट्र संवर्धन की भावना से प्रयोग किया गया है।[14] वैदिक संस्कृति यज्ञ प्रधान संस्कृति थी, जिसमें प्रत्येक कार्य यज्ञ द्वारा ही सम्पादित किये जाते थे। यज्ञों में भी राष्ट्र की समृद्धि के

लिए परमात्मा से प्रार्थना की जाती थी यथा – उनके राष्ट्र में ब्राह्मण ज्ञान सम्पन्न हो, राष्ट्र रक्षक क्षत्रिय शूरवीर, कला कुशल, शत्रुनाशक और महारथी हो, गाएँ पयस्विनी हो, स्त्रियाँ सर्वगुण सम्पन्न हो, युवक सुशील सदव्यवहार वाले, वनस्पतियाँ, जीवजन्तु, प्राप्त की प्राप्ति और प्राप्त की सुरक्षा (योगक्षेम) होती रही।[15] नवदम्पत्तियों को भी राष्ट्र की समृद्धि करते हुए ही अपनी समृद्धि करते रहने का आर्शीवाद दिया जाता था।[16] वैदिक ऋषियों का विश्वास था कि राष्ट्र की अखण्डता और प्रगति तभी संभव है, जब लोगों में एकजुटता होगी। समस्त विश्व में 'स्वराज्य' शब्द का उद्घोष सर्वप्रथम ऋग्वेद में ही किया गया है।[17] स्वराज्य के विस्तार और प्रजातान्त्रिक शासन हेतु हम सभी देशवासी प्रयत्नशील रहे जिसके लिए देवताओं से प्रार्थना भी की गई है। अपनी जन्मभूमि को माता मानने और जन्मभूमि को मातृभूमि[18] प्रतिष्ठित 'पद' की प्राप्ति सर्वप्रथम वेदों में ही दृष्टिगोचर होती है।[19]

राष्ट्रीय एकता :– अथर्ववेद में राष्ट्र की एकता पर बहुत बल दिया गया है। भारत एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है, यहाँ सभी धर्मों को समान महत्व दिया जाता है। वेदकालीन समाज में भी भिन्न–भिन्न भाषा भाषी, धर्म व समुदायों के होने पर भी लोगों में परस्पर वैमनस्य व द्वेष नहीं था निम्न मंत्र इस बात की पुष्टि करता है। इस मंत्र में बताया है कि अलग–अलग भाषा बोलने वाले, विभिन्न धर्मावलम्बी, नाना प्रकार के लोगों को धारण करने वाली पृथ्वी चंचलता रहित सुस्थिर गाय के समान धन की सहस्रो धाराएँ प्रवाहित करें।[20] इसी प्रकार राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत 'भूमिसूक्त' में प्रथम बार भूमि को माता एवं स्वयं को उसका पुत्र बताया है।[21] अतः माता (मातृभूमि) को सुरक्षित रखने का भी संदेश लोगों को दिया है।

अथर्ववेद के सौमनस्य सूक्त में पारस्परिक स्नेह, सौहार्द और सौमनस्य की कामना की गई है। परिवार को राष्ट्र की मूल इकाई बताया है, यदि परिवार में शांति व प्रेम है, तो समाज में भी शांति व्याप्त होगी। यदि परिवार में किसी प्रकार का क्लेह, द्वेष, वैमनस्य, ईर्ष्या नहीं होगी तो राष्ट्र में भी सर्वत्र सुख शांति का साम्राज्य स्थापित होगा। परिणामतः राष्ट्र प्रगति और समृद्धि की ओर अग्रसर होगा। मंत्रों में भी यही कामना की गई है कि परिवार के सदस्य एक दूसरे के प्रति द्वेष व ईर्ष्याभाव न रखे। वे एक दूसरे का आदर व सम्मान करें, मधुर व प्रिय वाणी बोले।[22]

वास्तुकला :– भारतीय संस्कृति में स्वीकृत चार आश्रमों में से द्वितीय आश्रम गृहस्थाश्रम में आवासीय आवश्यकताओं की पूर्ति के उद्देश्य से वास्तु शास्त्र का उद्भव माना जाता है। वैदिक ग्रन्थों में ऋग्वेद ऐसा प्रथम ग्रन्थ है जिसमें धार्मिक व आवासीय वास्तु की रचना का वर्णन मिलता है यद्यपि वैदिक काल में वास्तु का उपयोग विशेष रूप से यज्ञवेदियों की रचना व यज्ञशाला निर्माण आदि में होता रहा है, समयानुसार धीरे इसका प्रयोग देव प्रतिभाओं सहित देवालयों के निर्माण व भवन निर्माण में होने लगा। वैदिक ग्रन्थों में वास्तु का अर्थ भवन निर्माण में होने लगा। वैदिक ग्रन्थों में वास्तु का अर्थ भवन निर्माण व भू से है जिसका अर्थ है रहना अथवा निवास स्थान। वास्तु का जन्म मानव की उत्पत्ति, मानवता, मानव सभ्यता, मानव की आवश्यकताओं के साथ–साथ सदैव हुआ है। यज्ञवेदी ही भारतीय वास्तुकला की प्रथम वेदी है। यजुर्वेद में इस शिल्पविद्या पर प्रकाश डालते हुए वर्णन आता है कि ''ईश्वर ने कहा मैं शिल्पविधा को जानने वाला, यज्ञ करता हुआ सांसारिक प्राणियों के दुख और दरिद्रता आदि दोषों के विनाश की इच्छा से इस पृथ्वी पर शिल्पविद्या (वास्तु विद्या) की सिद्धि के लिए स्थापित करता हूं। यह शिल्प विद्या इसी से सिद्ध होती है कि जो अंतरिक्ष (ब्रह्माण्ड) में स्थित मेधमंडल में होम (यज्ञ) द्वारा पहुँचे हुए उत्तम पदार्थों की रक्षा करने वाला है, इस अग्नि को पृथ्वी में स्थापित करके विस्तृत व अवकाश युक्त घर व सुखों को प्राप्त होता है। श्रेष्ठ कर्मों को करता हुआ मनुष्य शुभ गुणों में वृद्धि प्राप्त करे इसलिए मैं (ईश्वर) भौतिक अग्नि का त्याग कभी नहीं करता।[23]

वास्तु का प्रथम चरण भूमि चयन से प्रारंभ होता है उसके उपरांत भूमि की परीक्षा, उसके बाद दिक् परीक्षा कर, निर्माण योजना की रूपरेखा निर्धारित की जाती है अर्थात् वास्तु प्रक्रिया चरणबद्ध होती हुई पराकाष्ठा तक पहुँचती है। मनुष्य सदैव प्रकृति प्रेमी रहा है, भूमि चयन के लिए विभिन्न घटकों में से प्राकृतिक सौन्दर्य भी महत्वपूर्ण घटक है। उसी प्रकार जलाधिक्य भी सदैव लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता है।[24]

जहाँ जल की कमी नहीं होगी वहाँ कृषि भी अच्छी होगी। कृषि का आर्यों के लिए कितना महत्व था यह क्षेत्रपति सूक्त द्वारा अच्छी तरह ज्ञात होता है।[25]

चिकित्सा :– वेद मानव सभ्यता के सबसे प्राचीन दस्तावेज है। जल, वायु, सौर, मानस चिकित्सा और हवन द्वारा चिकित्सा की जानकारी मिलती है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में 'औषधि सूक्त' में औषधियों का वर्णन आया है। इसमें 125 प्रकार की औषधियों के बारे में बताया गया है। औषधियों में सोम को महत्वपूर्ण बताया है। इसी प्रकार यजुर्वेद में दिव्य वैध और कृषि विज्ञान का वर्णन मिलता है। अथर्ववेद में रहस्यमयी विधाओं, जड़ी बूटियों और चमत्कारिक वस्तुओं का वर्णन मिलता है। यह वेद ज्ञान से श्रेष्ठ कर्म करते हुए परमात्मा की उपासना की शिक्षा देते हैं। साथ ही अथर्ववेद में चतुर्वण, चार आश्रम, समाज में नारी की सम्मानित स्थिति, षोड्श संस्कार इत्यादि का विशद वर्णन भी समाहित है। अथर्ववेद विज्ञानों का भंडार है यथा स्पर्श चिकित्सा, मनोविज्ञान चिकित्सा, विष निवारण, ज्वर नाश, सर्पविश नाश चिकित्सा, वनस्पति विज्ञान, प्राण विज्ञान, काम विज्ञान, मनोविज्ञान, कृषि विज्ञान, खगोल विज्ञान, मणि विज्ञान, कृषि विज्ञान इत्यादि।

अथर्ववेद में भैषज्यानि सूक्त के अन्तर्गत विविध रोगों की चिकित्सा सम्बन्धित है जैसे ज्वर, कुण्ठ, मूर्च्छा, कफ, श्वास, नेत्र रोग, गंजेपन, घावों का उपचार, सर्प दंश तथा अन्य विषैले कीड़ों के काटने से उत्पन्न विष को दूर करने वाले मंत्रों द्वारा उपचार की प्रक्रिया बताई गई है। जैसे – एक मंत्र में एक लता को कुण्ठ एवं पलित रोग का निवारण करने वाली बताया है कि हे वनस्पति, तेरा प्रादुर्भाव रात को हुआ है। तू काली, भूरी और साँवली है, तेरा रंग बड़ा पक्का है, अपनी तरह मेरे सफेद दाग को भी तू काला बना दे।[26] इसी प्रकार आयुष्य सूक्तों में स्वास्थ्य और दीर्घजीवन सम्बन्धित प्रार्थनाएँ है। कुतांप सूक्तों में यज्ञ सम्बन्धी दानस्तुतियाँ, राजकुमारों व यजमानों की उदारता की प्रशंसा व अनेक पहेलियाँ व उनके समाधान का वर्णन मिलता है। इसी प्रकार राजकर्माणि सूक्तों में राजाओं का वर्णन है तथा शत्रु विजय की प्रार्थनाएँ है, इनमें राज्याभिषेक, राष्ट्र में समानाधिकार देश रक्षा, राजा के कर्तव्य, प्रजा द्वारा राजा का निर्वाचन, न्याय और दण्ड विधान सम्बंधी मंत्र है। इन सूक्तों में तत्कालीन राजनैतिक स्थितियों का भी चित्र प्राप्त होता है।

दार्शनिक विषय :– वेदों में दार्शनिक प्रश्नों पर चिंतन प्रथम बार किया गया है यथा – जगत का निर्माण कैसे, कब, किसके द्वारा किया गया ? जगत की सृष्टि कैसे हुई, मृत्यु पश्चात् मनुष्य का क्या होता है ?, प्रलय, पुनर्जन्म सिद्धान्त, कर्मफल इत्यादि असंख्य दार्शनिक प्रश्नों

का उत्तर हमें सर्वप्रथम वेदों में दृष्टिगोचर होता है जैसे – पुरूष सूक्त (ऋग्वेद 10.90) में पुरूष के शरीर को जगत की उत्पत्ति का उपादान कारण बताया है, देवता केवल सहायक उपकरण है। सृष्टि की उत्पत्ति कार्य एक यज्ञ है, जिसमें पुरूष की बलि दी जाती है, वह परम पुरूष सहस्रशीर्ष तथा सहस्रपात है, जो समस्त पृथ्वी को व्याप्त करने के बाद भी शेष है।[27] उस परम पुरूष की असीमित शक्ति में उसके विविध अंग, संसार के अंग बन गए जैसे उसकी नाभि अंतरिक्ष बनी, मस्तक स्वर्ग बना, पैर भूमि बने तथा क्षोत्र से दिशाएँ बनी। इस चतुर्धा पुरूष से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की उत्पत्ति मानी गई।[28] सृष्टि की उत्पत्ति विषयक ''नासदीय सूक्त'' में बताया है तब न असत् था, न सत् था, न मृत्यु थी, न रात थी, न दिन थे और न ही कोई वस्तु थी, वह अकेला बौद्धिक तत्व अपनी शक्ति से विद्यमान था, उसी से सम्पूर्ण सृष्टि अस्तित्व में आई।[29] नासदीय सूक्त सर्वोत्तम दार्शनिक तथ्य का प्रतिपादन करता है। एकेश्वरवाद का प्रतिपादन करने वाला बहुत ही सुन्दर और काव्यात्मक सूक्त है। इसी प्रकार हिरण्यगर्भ सूक्त (10/121) के अनुसार संसार की उत्पत्ति हिरण्यगर्भ से हुई। सर्वप्रथम एक दिव्य तत्व था जिसने इच्छा की 'एकोऽहं बहुस्याम् प्रजायै इति' (मैं एक प्रजा के लिए बहुत हो जाऊँ) उसकी यह इच्छा उसका तप कहलाया तदन्तर सम्पूर्ण सृष्टि हुई।

जीवन के बाद, मृत्यु और मृत्यु के बाद मनुष्य का क्या होता है ? इस प्रश्न पर ऋग्वेद के यमसूक्त में प्रकाश डाला है। वैदिक ऋर्षि मरणांतर जीवन के प्रति आशावादी थे, उनके अनुसार मृत्यु के पश्चात् प्रेतात्मा उसी शाश्वत प्रकाश की ओर, उसी मार्ग से जाती है जिससे उसके पूर्वज गये थे और वहाँ स्वधा से आनन्दित होते हुए यमराज और वरूण देव को देखता है।[30] मृत्यु के बाद भौतिक शरीर का नाश होता है परन्तु परलोक में जाकर एक ओर तेजस्वी शरीर की प्राप्ति होती है। वेदों में बताया है कि व्यक्ति अपने शुभ कर्मों के फलस्वरूप परलोक को प्राप्त करते हैं, इन्द्र अपने महान कर्मों के कारण संसार में प्रसिद्ध हुआ – 'यः कर्मभिर्महदभिः सुश्रुतोऽभूत'। शुभ कर्मों के परिणामस्वरूप मनुष्य समस्त आनंद का भोग करता है – 'सुकृत्तमाः मधुना भक्षमाशत्।' ठीक इसके विपरीत दुष्कर्म करने वाले व्यक्ति की निंदा की है। ऐसे व्यक्ति ऋत के मार्ग को पार नहीं कर पाते – ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः। देवता भी दुराचारियों को अंधकार से युक्त पाताल लोक में डाल देते हैं। यद्यपि परवर्ती साहित्य में कर्म सिद्धान्त का पुनर्जन्म सिद्धान्त से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया है

परन्तु ऋग्वेद में शुभ कर्मों के महत्व और दुष्कर्मों के अशुभ परिणाम को प्रतिपादित करने के पश्चात् भी पुनर्जन्म का स्पष्ट संकेत कहीं नहीं प्राप्त होता है।

उपसंहार :–

वेद प्रत्येक भारतीय के लिए आस्था का महत्वपूर्ण स्त्रोत है। वेद मनुष्य को आचार–विचार, ज्ञान, दर्शन, कला, मानवीयता, उपयोगी जीवन दर्शन का पाठ पढ़ाते हुए दिशा भ्रमित होने से बचाते हैं। वेद अमूल्य धरोहर है, संसार का शायद ही कोई ऐसा विषय होगा जो वेदों में प्रतिबिम्बित न होता हो। वर्तमान समय में हम पर्यावरण प्रदूषण जैसी गंभीर परेशानी से जूझ रहे हैं, न केवल भारत अपितु समस्त दुनिया इसके विषैले दंश का शिकार बनती जा रही है। यदि हम पर्यावरण संरक्षण के लिए वैदिक रीति का अनुसरण करेंगे तो हम पर्यावरण को संरक्षित कर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर उपकार करेंगे। वैदिक संस्कृति यज्ञ प्रधान संस्कृति थी जिसमें प्रत्येक अवसर पर यज्ञों को करने का विधान था। यज्ञों में आहूत सामग्री द्वारा पर्यावरण संरक्षण में सहयोगी होता है, साथ ही आजकल मनुष्य की लालची प्रवृति ने जंगलों को साफ कर वनस्पति, जीव जन्तुओं के जीवन पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। 'जल' के बिना जीव–जन्तु, मानव, वनस्पति सभी मृतवत् है। जल की कमी से जूझ रहे हम सभी लोग वैदिक रीति से 'जल संरक्षण' की प्रक्रिया को अपनाकर जल का सदुपयोग कर सकते हैं, क्योंकि जल की एक–एक बूँद अनमोल है। जल प्रदूषण, भूमि प्रदूषण, वनस्पति प्रदूषण, शोर प्रदूषण, वायु प्रदूषण जैसे सभी विषैले दानवों का सामना वेदों द्वारा किया जा सकता है।

वर्तमान समय में एकल परिवार की परम्परा तेज़ी से विकसित हो रही है जबकि संयुक्त परिवार की परम्परा धूमिल होती जा रही है। आज का युवा 'ीपजम बवससंत रवइ' और सुख सुविधाओं से परिपूर्ण अपना एकल परिवार चाहता है। आज का युवा संयुक्त परिवार का महत्व उसकी ताकत को नहीं जानता वह तो केवल सुविधाभोगी आधुनिक बनने की ललक में लगातार दिशा भ्रमित हो लगातार दौड़ता जा रहा है, उसे नहीं पता उसके लालच की क्या सीमा है जबकि दूसरी ओर वैदिक संस्कृति है, जिसमें वसुधैवकुटुम्बकम्, अहिंसा, सत्य, नैतिकता, सर्वे भवन्तु सुखिनः, परोपकार, सादा जीवन उच्च विचार, धार्मिकता, दार्शनिकता आदि विचार समाहित है। वेद हमें बताते हैं कि संयुक्त परिवार व्यक्ति की शक्ति होते हैं,

परिवार से संस्कारों को पोषण मिलता है, हमारे रीति–रिवाज, परम्पराएँ, आदतें, विश्वास, मूल्य पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होते हैं। कृषि भारत का प्रमुख परिवार पालन–पोषण का साधन होता था परन्तु आज का युवा कृषि नहीं करना चाहता, उसके सपनों में कृषक बनना है ही नहीं। जबकि वेद हमें कृषि, रोजगार, उद्योगों से धनार्जन करने की शिक्षा प्रदान करते हैं। वेद हमें आत्मनिर्भर बन, देश का उपयोगी नागरिक बनने की दिशा में उन्मुख करते हैं। वेद भारतीय संस्कृति और सभ्यता के प्रति अगाध प्रेम व श्रृद्धा का भाव उत्पन्न करते हैं। सभी रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा, मन्त्रों, यज्ञों और जड़ी बूटियों द्वारा उपलब्ध है। वर्तमान में प्रचलित वैश्वीकरण सिद्धान्त वेदों की ही देन है। अतः स्पष्ट है कि वेद भारतीय संस्कृति की सशक्त आधारशिला है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

01. अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः।

तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे विचष्टे सवितायमर्यः।।

(ऋग्वेद 10.34.13)

(ऋग्वेद सायण भाष्य सहित, संपादक – विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानंद वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, होशियारपुर, प्रथम संस्करण, 1961)

02. न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः।

अपास्मात्प्रेयान्न तदोको अस्ति पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत्।।

(ऋग्वेद 10.117.4)

(ऋग्वेद सायण भाष्य सहित, संपादक – विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानंद वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, होशियारपुर, प्रथम संस्करण, 1961)

03. सक्तुमिव तितउना पनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।

अत्रा सखायः सख्यानि जानते भ्रदैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि।।

(ऋग्वेद 10.71.2)

(ऋग्वेद सायण भाष्य सहित, संपादक – विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानंद वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, होशियारपुर, प्रथम संस्करण, 1961)

04. सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।

हत्प्रतिष्ठिं यद जिरं जविष्ठ तन्ये मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

(शुक्ल यजुर्वेद 34वाँ अध्याय, 06 मन्त्र)

(यजुर्वेद भाष्य, महर्षि दयानंद सरस्वती, दयानंद संस्थान, नई दिल्ली–05)

05. मित्रस्याहं चक्षुषो सर्वाणि भूतानि समीक्षे।

(शुक्ल यजु. 34वॉ अध्याय)

(यजुर्वेद भाष्य, महर्षि दयानंद सरस्वती, दयानंद संस्थान, नई दिल्ली–05)

06. रूचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रूपं राजासु नस्कृधि।

रूयं विश्येषु शूद्रेषु भमि धेहि रूचा रूचम्।।

(यजु. 18.48)

(यजुर्वेद भाष्य, महर्षि दयानंद सरस्वती, दयानंद संस्थान, नई दिल्ली–05)

07. कुर्वन्नेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः

(यजु. 40/2)

(यजुर्वेद भाष्य, महर्षि दयानंद सरस्वती, दयानंद संस्थान, नई दिल्ली–05)

08. शुश्रूषस्व गुरून् कुरू प्रियसखीवृतिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः।।

(अभिज्ञान शाकुन्तलम्, कालिदास, अंक 04, 18 श्लोक, साहित्य भंडार, मेरठ, 1964)

09. इहैव स्तं मा वियोष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नल्प्टभिमोदमानौ स्वे गृहे।।

(ऋग्वेद 17.85.42)

(ऋग्वेद सायण भाष्य सहित, संपादक – विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानंद वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, होशियारपुर, प्रथम संस्करण, 1961)

10. समज्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ।
सम्मातरिश्वा सन्धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ।।

(ऋग्वेद 10.85.47)

(ऋग्वेद सायण भाष्य सहित, संपादक – विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानंद वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, होशियारपुर, प्रथम संस्करण, 1961)

11. सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमोवीरं कर्मण्यंददाति।

(ऋग्वेद 01/91/20)

(ऋग्वेद प्रथम व द्वितीय भाग, महर्षि दयानंद सरस्वती, दयानंद संस्थान, नई दिल्ली–05)

12. सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते।।

(ऋग्वेद 10/191/02)

(ऋग्वेद सायण भाष्य सहित, संपादक – विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानंद वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, होशियारपुर, प्रथम संस्करण, 1961)

13. समानो मन्त्रः समितिः समानी।

समानं मनः सह चित्तमेषाम्।।

समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः

समानेन वो हविषा जुहोमि ।।

(ऋग्वेंद 10/191/03)

(ऋग्वेद सायण भाष्य सहित, संपादक – विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानंद वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, होशियारपुर, प्रथम संस्करण, 1961)

14. वयं राष्ट्रे जागृयाम् पुरोहिताः

(यजुर्वेद 9/23)

(यजुर्वेद भाष्य, महर्षि दयानंद सरस्वती, दयानंद संस्थान, नई दिल्ली–05)

15. आ ब्रह्मन् ब्राह्मणों ब्रह्मवर्चसी जायतामा, राष्ट्रे राजन्यः ....

योगक्षेमो नः कल्पताम्।

(यजुर्वेद 22/22)

(यजुर्वेद भाष्य, महर्षि दयानंद सरस्वती, दयानंद संस्थान, नई दिल्ली–05)

16. अभिवर्धतां पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम्।

रय्या सहस्रवर्चसेमो स्तामनुपक्षितौ।।

(अथर्ववेद 6/78/02)

(अथर्ववेद, भाषा भाष्यम् – महर्षि दयानंद सरस्वती, दयानंद संस्थान, नई दिल्ली–05)

17. आ यद्वामीयचक्षसा मित्रं वयं च सूरयः।

व्यचिष्ठे बहुपाय्ये पतेमहि स्वराज्ये।।

(ऋग्वेद 05/66/06)

(ऋग्वेद सायण भाष्य सहित, संपादक – विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानंद वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, होशियारपुर, प्रथम संस्करण, 1961)

18. तन्नो वातो मयो भुवातु भेषजंतन्माता पृथिवी तत् पिता द्यौः।

(ऋग्वेद 01/89/04)

(ऋग्वेद सायण भाष्य सहित, संपादक – विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानंद वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, होशियारपुर, प्रथम संस्करण, 1961)

19. इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः।

सा नो भूभिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः।।

(अथर्ववेद 12/01/10)

(अथर्ववेद, भाषा भाष्यम् – महर्षि दयानंद सरस्वती, दयानंद संस्थान, नई दिल्ली–05)

20. जनं विभ्रती बहुधा विवाचसं, नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
सहस्र धारा द्रविणस्य में दुहां, ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती।।

(अथर्ववेद 12.1.20)

(अथर्ववेद, भाषा भाष्यम् – महर्षि दयानंद सरस्वती, दयानंद संस्थान, नई दिल्ली–05)

21. माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या

(अथर्ववेद, भूमिसूक्त 12.01.12)

(अथर्ववेद, भाषा भाष्यम् – महर्षि दयानंद सरस्वती, दयानंद संस्थान, नई दिल्ली–05)

22. सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यतं वत्सं जातमिवाध्न्या।।
अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्।।
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा
सभ्यंचः सव्रता भूत्वा वाचा वदत भद्रया।।

(अथर्ववेद 3.30.1.3)

(अथर्ववेद, भाषा भाष्यम् – महर्षि दयानंद सरस्वती, दयानंद संस्थान, नई दिल्ली–05)

23. भतायात्वानाशये स्वरामिविख्येषं दहन्ताम दुर्य्याः
प्रथिव्यामर्वन्तरिक्षमन्वेमि।
पृथिव्यास्त्वां नाभौ साद्याभ्यदित्या उपस्थेग्ने हव्य रक्ष।।

(यजु. प्रथम अध्याय पृ.–3, सूक्त–11)

(यजुर्वेद भाष्य, महर्षि दयानंद सरस्वती, दयानंद संस्थान, नई दिल्ली–05)

24. स्वायुधं स्ववसं सुनीथं चतुः समुद्र धरणं रयीणाम्।

(ऋग्वेद 10/47/2)

(ऋग्वेद सायण भाष्य सहित, संपादक – विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानंद वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, होशियारपुर, प्रथम संस्करण, 1961)

25. इन्द्र सीतां निगृहलातु तां पूषानु यच्छतु।

सा न पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम्।।

शुनं न फाला विकृषन्तु भूमि

शुनं कीनाशा अभियन्तु वाहैः

शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः

शुनासीरा शुनमस्मासु धत्त।

(ऋग्वेद क्षेत्रपति सूक्त, मन्त्र त्र 7–9)

(ऋग्वेद सायण भाष्य सहित, संपादक – विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानंद वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, होशियारपुर, प्रथम संस्करण, 1961)

26. नक्तं जातस्यौषधे रामे कृष्णे असिक्नि च।

इदं रंजनि रजय किलासं पलित्र् च यत्।।

(अर्थ. 01/23/01)

(अथर्ववेद, भाषा भाष्यम् – महर्षि दयानंद सरस्वती, दयानंद संस्थान, नई दिल्ली–05)

27. सहस्रशीर्षा पुरूषः सहस्रांक्षः सहस्रपातः

स भूमि विश्वतो वृत्वावृत्यतिष्ठद्दशांगुलम्।

(ऋग्वेद 10.90.09)

(ऋग्वेद सायण भाष्य सहित, संपादक – विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानंद वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, होशियारपुर, प्रथम संस्करण, 1961)

28. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः

उरू तदस्य यद वैश्यः पदभ्यां शूद्रो अजायत।।

(ऋग्वेद 10/90/12)

(ऋग्वेद सायण भाष्य सहित, संपादक – विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानंद वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, होशियारपुर, प्रथम संस्करण, 1961)

29. न मृत्यरासीदमृतं न तर्हि

न रान्या अह्न आसीत्प्रकेतः।

आनीदवातं स्वधया तदेकं

तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास।।

(ऋग्वेद 10/129/02)

(ऋग्वेद सायण भाष्य सहित, संपादक – विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानंद वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, होशियारपुर, प्रथम संस्करण, 1961)

30. प्रेहि प्रहि पथिभिपूर्व्येभिर्यत्रा न पूर्वे पितरः परेयुः।

उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरूणं च देवम्।।

(ऋग्वेद 10/14/09)

(ऋग्वेद सायण भाष्य सहित, संपादक – विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानंद वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, होशियारपुर, प्रथम संस्करण, 1961)